वॉल्टर कॉफमैन: शरणार्थी की तरह भारत आए इस व्यक्ति का संगीत आज भी कानों में रस घोल रहा है

वॉल्टर कॉफमैन को कितने लोग जानते होंगे ? भारत में इस नाम से ज्यादा लोग शायद परिचित न हों, लेकिन उनकी बनाई एक धुन को देश के अधिकांश लोग अच्छी तरह जानते-पहचानते होंगे. उन सभी ने, जिनके घरों में रोज सुबह 5.55 पर रेडियो सेट खुल जाता था या हो सकता है अब भी खुलता हो, आकाशवाणी (ऑल इंडिया रेडियो या एआईआर) की यह सिग्नेचर टचून जरूर सुनी होगी.

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के राग शिवरंजिनी में यह धुन यहूदी संगीतकार वॉल्टर कॉफमैन ने रची थी. रेडियो पर यह पहली बार कब आई, इस बारे में दावे के साथ कोई कुछ नहीं कह सकता. भारतीय राज्य प्रसारण सेवा (आईएसबीसी) की शुरुआत आठ जून 1936 से होती है. वैसे भारत में रेडियो प्रसारण जून 1923 से शुरू हो चुका था जब रेडियो क्लब ऑफ बॉम्बे ने कार्यक्रमों का प्रसारण शुरू किया था. लेकिन सही मायने में एआईआर का जन्म आईएसबीसी के रूप में 1936 से ही हुआ. वॉल्टर कॉफमैन फरवरी 1934 में भारत आए थे. वे यहां करीब 12-14 साल रहे. बताते हैं कि इस दौरान जब वे आईएसबीसी के बॉम्बे (मुंबई) स्टेशन में संगीत निदेशक थे, तभी यह धुन रची गई. तो इस धुन को करीब आठ दशक पुराना तो माना ही जा सकता है. हालांकि कुछ लोग यह भी मानते हैं कि यह धुन ठाकुर बलवंत सिंह ने रची थी. मूल रूप से हिमाचल के रहने वाले बलवंत सिंह गायक, संगीतकार और अभिनेता थे, जो 1935-36 के आसपास ही मुंबई में आकर बसे थे. हालांकि बहुसंख्यक जानकार कॉफमैन को ही इस धुन का मूल रचनाकार मानते हैं.

वॉल्टर कॉफमैन 1907 में वर्तमान चैक गणराज्य के कार्ल्सबाड कस्बे में पैदा हुए थे. यह तब की बात है कि जब इस इलाके में नाज़ियों का कब्जा था. कॉफमैन यहूदी थे और नाज़ियों को यहूदी फूटी आंख नहीं सुहाते थे. नाज़ियों के अत्याचार का सबसे बड़ा शिकार यही समुदाय था. इसके चलते नाज़ियों के प्रभाव वाले हर इलाके से यहूदी जान बचाकर भाग रहे थे. दूसरे देशों में शरण ले रहे थे. इन्हीं में कॉफमैन भी थे, जिन्हें हिंदुस्तान में शरण मिली. वे सबसे पहले बॉम्बे पहुंचे, जहां कुछ महीनों बाद ही उन्होंने बॉम्बे चैम्बर म्यूजिक सोसायटी की स्थापना की. यह समूह हर गुरुवार को विलिंगडन जिमखाना में संगीत की प्रस्तुति देता था. ऊपर जो तस्वीर है, वह ऐसी ही प्रस्तुति की है. इसमें कॉफमैन पियानो बजा रहे हैं. मेहता वायलिन और एडीगियो वर्गा सेलो (वायलिन जैसा बड़े आकार का साज़) पर हैं.

मई 1937 तक यह सोसायटी 136 प्रस्तुतियां दे चुकी थी. संगीत के सभी चाहने वाले इस सोसायटी के सदस्य बन सकते थे. पूर्ण सदस्यता के लिए महीने में 15 रुपए और कामकाजी महिलाओं, मिशनरी के सदस्यों और छात्रों से पांच रुपए का शुल्क लिया जाता था. कॉफमैन औपचारिक रूप से भी संगीत की शिक्षा ली थी. उन्होंने बर्लिन से संगीत की डिग्री ली थी. सिर्फ संगीतकार नहीं थे, कॉफमैन संगीत शास्त्र के विद्वान भी थे. प्राग के जर्मन विश्वविद्यालय से उन्होंने इसमें पीएचडी की थी. हालांकि जब उन्होंने देखा कि उनके शिक्षक गुस्ताव बेकिंग नाज़ी युवा वाहिनी के नेता है तो उन्होंने पीएचडी डिग्री लेने से मना कर दिया. इस बीच उन्होंने 1927 से 1933 तक बर्लिन, कार्ल्सबाड, एगर आदि शहरों में कई संगीत प्रस्तुतियां दीं.

फिर वॉल्टर कॉफमैन मुंबई पहुंचे. अपने एक पत्र में वे भारत आने का कारण बहुत साधारण सा बताते हैं. उनके मुताबिक, 'मुझे आसानी से वीजा (भारत का) मिल गया था.' उनके इस पत्र का जिक्र लेखक अगाता शिंडलर ने अपनी किताब 'वॉल्टर कॉफमैन : अ फॉरगॉटेन जीनियस' में किया है. इसी पत्र में कॉफमैन भारतीय संगीत पर अपनी पहली प्रतिक्रिया का भी ईमानदारी से जिक्र करते हैं. वे लिखते हैं, 'पहले-पहल जब मैंने भारतीय संगीत सुना तो मुझे समझ ही नहीं आया. यह मेरे लिए अजूबे की तरह था.' लेकिन उन्होंने मसला यहीं पर छोड़ा नहीं. वे आगे लिखते हैं, 'मैं जानता था कि यह संगीत लोगों ने दिल-दिमाग से रचा गया है. लाखों लोग इसे पसंद करते हैं. इससे प्यार करते हैं.'

इसके बाद वे कहते हैं, 'मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि गलती मेरी ही है. मुझे अगर इस संगीत को समझना है तो इसका अध्ययन करना होगा. उन जगहों पर जाना होगा, जहां से यह पैदा होता है.' इसके बाद उन्होंने हिंदुस्तानी संगीत पर गहन अध्ययन किया. इतना कि किताबें तक लिख डालीं. इनमें से कुछ हैं, 'द रागाज ऑफ नॉर्थ इंडिया, द रागाज ऑफ साउथ इंडिया', 'ए कैटलॉग ऑफ स्कैलर मटेरियल एंड म्यूजिकल नोटेशंस ऑफ द ओरिएंट', 'नोटेशनल सिस्टम ऑफ कॉटिनेंटल, ईस्ट, साउथ एंड सेंट्रल एशिया.' वे 1937 से 1946 तक आकाशवाणी से जुड़े रहे. इस दौरान कई महान संगीतकारों से भारतीय संगीत सीखा. साथ ही उनका व्यवहार भी समझा.

ऐसे ही एक रोचक किस्से में वॉल्टर कॉफमैन बताते हैं, 'ज्यादातर पुराने कलाकार चेक से मेहनताना नहीं लेते थे. उनका जोर सिक्के लेने पर होता था. यह देखना दिलचस्प था कि ये महान और शानदार संगीतकार अपने साथ कोई लड़का भी लाते थे. यह उनका बेटा या भतीजा होता था, जो सिक्कों को पूरी विश्वसनीयता से गिना करता था. कई बार तो दोनों (संगीतकार और उनका सहयोगी) को स्टूडियो के बाहर ही सिक्के वाली थैली खोलकर फर्श पर बैठे हुए सिक्के गिनते देखा जा सकता था.' बहरहाल कॉफमैन ने जो भारतीय संगीत सीखा उसकी झलक बाद में उनके ऑपेरा और फिल्म संगीत (एआईआर टचून में भी) बखूबी दिखी.

कॉफमैन ने हिंदी फिल्मों में भी संगीत दिया. 'भवानी फिल्म्स' और इन्फॉर्मेशन फिल्म्स ऑफ इंडिया के साथ वे लंबे समय तक जुड़े रहे. इसी बीच उन्होंने भारतीय पृष्ठभूमि से प्रेरित ऑपेरा तैयार किया 'अनुसुइया.' इसे 'भारतीय रेडियो का पहला ऑपेरा' कहा जाता है, जिसकी पहली प्रस्तुति 1939 में हुई.

कॉफमैन परंपरावादी के साथ ही नए और प्रयोगधर्मी संगीत का भी समर्थन करते थे. बिना सुने ही

आधुनिक संगीत की आलोचना करने के वे सख्त खिलाफ थे. एक बार तो उन्होंने ग्रीन्स होटल में हुई रोटरी क्लब की बैठक के दौरान खुलकर अपने इस तरह के विचार जाहिर किए. तब उनका कहना था, 'हम अक्सर लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि अरे, मैं तो पुराना संगीत ही पसंद करता हूं. आजकल का संगीत मुझे पसंद नहीं आता. लेकिन क्या यह हास्यास्पद नहीं है कि हमारे समय में ही पैदा हुआ कोई व्यक्ति 200-300 साल पुराने संगीत को तो समझ लेता है, लेकिन अपने दौर के संगीत को नहीं समझ पाता.'

संगीत और खासकर भारतीय संगीत से कॉफमैन का प्यार भारत छोड़ने के बाद भी कम नहीं हुआ. हिंदुस्तान से जाने के बाद वे कुछ समय इंग्लैंड और कनाडा में रहे. फिर 1957 में अमेरिका चले गए. वहां उन्होंने ब्लूमिंगटन की इंडियाना यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ म्यूजिक में बतौर शिक्षक काम शुरू कर दिया. लेकिन भारतीय संगीत पर लेखन तब भी जारी रहा. यह तभी थमा, जब 1984 में उन्होंने इस दुनिया को अलविदा कहा.

ऐसे संगीतकार को आज उन्हीं की बनाई एक धुन के साथ याद करने से बेहतर कुछ नहीं हो सकता. इसे कॉफमैन ने 'मेडिटेशन' नाम दिया था.

साभार – https://satyagrah.scroll.in/ से